Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2018 = 6.371, www.srjis.com
PEER REVIEWED JOURNAL, JAN-FEB, 2019, VOL- 6/49

प्राचीन भारत में प्राथमिक शिक्षा

Mahavir Singh Chhonkar, Ph. D.
Associate Professor & Principal, K.R. T.T. College, Mathura

Abstract

प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ 5 वर्ष की आयु में ''विद्यारम्भ संस्कार'' से होता था और सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य था। इसका अभिप्राय यह है कि सभी जातियों के बालक प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। समुदाय से शिक्षा के रूप में जो मिलता था, वही उसका मुख्य भोजन होता था। वेदों का अध्ययन पाठ्यचर्या का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता था। शिष्यों को सीखाया जाता था कि संध्या, वंदन और धार्मिक तथा सामाजिक कर्तव्यों को किस प्रकार विधि पूर्वक पूरा करना है। आयु पद और जाति के अनुसार उसे शारीरिक कार्य भी सीखाएं जाते थे। इन सब के अतिरिक्त शिष्य से गुरू और उनके परिवार के व्यक्तिगत सेवा की भी आशा की जाती थी। यथा–वन से लकड़ी लेना, भिक्षावृत्ति कर अनाज लाना, पशुओं को चराना और गुरूकुल को स्वच्छ रखना। इस प्रकार सामाजिक कर्तव्यों का कार्य कलाप और जीवन ऐसे होते थे, जिनसे शिष्य के व्यक्तित्व के सुसंगत विकास में सहायता मिलती थी। गुरू आध्यामित्मक एवं बौद्धिक पिता होता था और वह शिष्य को अपनी मानस सन्तान मानता था। अतः दोनों में पिता पुत्र के समान सम्बन्ध होता था। प्राच्य शिक्षा प्रणाली एक आदर्श शिक्षण पद्धति थी।

पारिभाषिक शब्दावली: प्राथमिक शिक्षा, पाठ्यचर्या, सामाजिक कर्तव्य, गुरूकुल, विद्यारम्भ संस्कार।

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

विवेचन एंव विश्लेषण : भारत में शिक्षा की परम्परा बहुत प्राचीन है, इतनी प्राचीन कि उसका प्रारम्भ कितने वर्ष पहले हुआ था, आज यह बात निश्चित रूप से बता पाना कठिन है। 1000 ई0पू0 तक के प्रागैतिहासिक काल तक किसी व्यस्थित शिक्षा व्यवस्था का प्रमाण नहीं मिलता। सम्भवतः लोग जो भी सीखते थे, अपने परिवार से ही सीखते थे। गृहस्वामी अपने पुत्रों का ज्ञान करा देता था। इस प्रकार शिक्षा सीमित वर्ग तक ही उपलब्ध थी। बाद में जब जीवन जटिल से जटिलतर बनता गया, कुछ विद्वानों के विशाल ज्ञान–भण्डार और ख्याति के कारण कुछ शिष्य उनकी ओर आकर्षित होने लगे एवं उनके घर जाकर ज्ञानार्जन करने लगे। इस प्रकार धीरे–धीरे शिक्षा व्यवसायी के रूप में ''गुरू'' और संस्थाओं के रूप में ''गुरूकुल'' अथवा आश्रम समाज के मंच पर उभरे। कालान्तर में ब्राह्मण जो अन्य वर्ण के लोगों की अपेक्षा अधिक विद्वान थे, शिक्षा देने का पूरा काम अपने नियंत्रण में ले लिया और धीरे–धीरे उन्होंने एक ऐसी व्यवस्थित शिक्षा व्यवस्था को विकसित किया जिसे ब्राह्मणकालीन शिक्षा व्यवस्था के नाम से जाना गया। डा0 मुखर्जी के अनुसार ''वैदिक कालीन भारत शिक्षा के क्षेत्र में पारिवारिक पद्धति पर विश्वास रखता था, न कि संस्थाओं में यान्त्रिक प्रणालियों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन में''[1] इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य शिष्यों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करना और उनकी विशुद्ध पारिवारिक परम्परा (वर्ण) के उन्हें भारी व्यवस्थाओं के लिए तैयार करना था।

डा0 बेद मित्र के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ 5 वर्ष की आयु में ''विद्यारम्भ संस्कार'' से होता था और सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य था। इसका अभिप्राय यह है कि सभी जातियों के बालक प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। इस शिक्षा की अवधि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई स्त्रोत उपलब्ध नहीं है, परन्तु एस0 अल्तेकर का मतह कि इसकी अवधि 6 वर्ष की थी। वातावरण, सदाचार के उपदेशों , महापुरूषों के उदाहरणों, महान विभूतियों के आदर्शो

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

आदि के द्वारा छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाता था। डा0 वेद मित्र का कथन है , ''छात्रों के चरित्र निर्माण करना, शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य माना जाता था। [2]

प्राचीन काल में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को पहले कुछ वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना तथा बोलना सीखाया जाता था। जब वे उन मंत्रों को कंठस्थ कर लेते थे, तब उनको पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाती थी। भाषा का वांछित ज्ञान हो जाने के बाद उनको साहित्य तथा व्याकरण से परिचित कराया जाता था। इस प्रकार प्राचीन भारत में प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के रूप में वैदिक मंत्रों का स्मरण, पढ़ना और लिखना , भाषा, साहित्य एवं व्याकरण आदि थे।

ब्राह्मणोत्तर काल में जाति और वर्ण–व्यवस्था के अधिक प्रबल एवं कठोर होने पर छोटी जाति वाले शुद्रों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अयोग्य ठहरा दिया गया, अतः वे लोग शिक्षा से बिल्कुल वंचित रह गए। अन्य लोगों को दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा धीरे–धीरे जटिल जाल में जकड़ती गयी। यह शिक्षा संस्कृत माध्यम से दी जाती थी जो साधारण लोगों के समझ से परे थी। ब्राह्मणकालीन शिक्षा मूल रूप से धार्मिक थी और उसका लक्ष्य जीवन को धार्मिक आदर्शो के अनुरूप ढालना था। गुरूकुल एक शिक्षक वाले आवासीय विद्यालय होते थे। उनका संचालन अधिकांशतः समाज द्वारा किए गए दान और भिक्षा से होता था। गुरूकुल घनी वस्तियों से दूर शांत एकान्त स्थान पर होते थे, जिससे वहाँ किसी बाहरी उपद्रवों और हस्तक्षेप के बिना शिक्षा के कार्य–कलाप चलते रहे। गुरूकुल में प्रवेश के समय शिष्य का ''उपनयन'' संस्कार होता था वहाँ उसका जीवन अत्यन्त अनुशासित, सरल और आडम्बर रहित होता था उससे आशा की जाती थी कि वह सूर्योदय के पहले (ब्रह्म मुहूर्त) उठे , स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहने और अध्ययन कार्य प्रारम्भ करने से पहले प्रातःकालीन प्रार्थना करे। समुदाय से शिक्षा के रूप में जो मिलता था, वही उसका मुख्य भोजन होता था। वेदों का अध्ययन पाठ्यचर्या का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता था। शिष्यों को सीखाया जाता था कि संध्या, वंदन और धार्मिक तथा सामाजिक कर्तव्यों को किस प्रकार विधि पूर्वक पूरा करना है। आयु पद और जाति के अनुसार उसे शारीरिक कार्य भी सीखाएं जाते थे। इन सब के अतिरिक्त शिष्य से गुरू और उनके परिवार के व्यक्तिगत सेवा की भी आशा की जाती थी। यथा–वन से लकड़ी लेना, भिक्षावृत्ति कर अनाज लाना, पशुओं को चराना और गुरूकुल को स्वच्छ रखना। इस प्रकार गुरूकुल का कार्य कलाप और जीवन ऐसे होते थे, जिनसे शिष्य के व्यक्तित्व के सुसंगत विकास में सहायता मिलती थी। अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है ''आचार्य उपनयमानों ब्रह्माचाकरिण कृणते कृवृते गर्भमन्त''[3] अर्थात गुरू आध्यामित्मक एवं बौद्धिक पिता होता था और वह शिष्य को अपनी मानस सन्तान मानता था। अतः दोनों में पिता पुत्र के समान सम्बन्ध होता था।

ब्राह्मणकालीन भारत में अध्यापन अधिगम का कार्य अधिकतम मौखिक होता था। गुरू वैदिक ऋचाओं का गान किया करते थे, जिन्हें शिष्य ध्यान पूर्वक सुनकर कंठस्थ कर लेते थे। जब शिष्य इन ऋचाओं को दोहराते थे तो गुरू उनके उच्चारण पाठ पर विशेष ध्यान देते थे। उस समय अध्यापन की एक और विधि प्रचलित थी जिसे प्रश्नोत्तर विधि कहा जाता था। इस विधि में कभी गुरू प्रश्न करता था, शिष्यों को उनके उत्तर देने होते थे और कभी गुरू शिष्यों की जिज्ञासाओं का समाधान करता था। तीसरी विधि प्रदर्शन विधि थी। गुरू भिन्न–भिन्न प्रकार की धार्मिक क्रियाओं और अनुष्ठानों को स्वंय करके दिखाता था। शिष्यों की प्रगति का नित्य मूल्यांकन होता था, अतः वार्षिक परीक्षा का प्रश्न ही नहीं था। शिष्य की भूल–चूक पर शारीरिक दण्ड कभी कभार ही मिलता था। दण्ड पीठ पर देने का विधान था, कोमलांग में नहीं। जब शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी तो गुरू कनिष्ठ शिष्यों के शिक्षण , मंत्रणा एवं उनके कार्यो का अधययन एवं

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

निरीक्षण करने के लिए वरिष्ठ तथा कुशाग्र शिष्यों की सहायता लेने लगे। इस प्रकार इस काल में शिक्षण की एक नई पद्धति उभर कर सामने आयी जिसे आज ''मानीटर पद्धति'' के नाम से जाना जाता है।

ब्राह्मणकालीन शिक्षा व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण रूप था गुरू और शिष्य के बीच अत्यन्त सुखद, मधुर तथा स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का होना। गुरू और शिष्य के इस परस्सर सम्बन्ध का शिष्य के ज्ञानार्जन और उसके व्यक्तित्व पर रचनात्मक प्रभाव पड़ता था। उच्च वर्गो के परिवार के लड़कों की शिक्षा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, किन्तु लडकियों की शिक्षा विशेष परिस्थितियों में केवल घर पर होती थी।

लगभग ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी से जन–जीवन की परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण वैदिक कालीन ब्राह्मणीय शिक्षा में विश्रृखंलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे– ऐसे में महात्मा गौतम बुद्ध ने इस देश की भूमि पर अवतरित होकर शिक्षा को जन्म दिया। इस शिक्षा के विषय में डा0एफ0ई0 केई ने लिखा है : बौद्ध–शिक्षा 1,500 वर्ष से अधिक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा–पद्धति का विकास किया जो ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति की प्रतिद्वन्द्वी थी, पर अनेक बातों में उसके सदृश भी थी।''[1]

बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ । ये मठ न केवल धर्म के वरन् शिक्षा के भी केन्द्र थे और शिक्षा देने का कार्य उनमें निवास करने वाले भिक्षुओं द्वारा किया जाता था। इन तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए डा0 आर0के0 मुखर्जी ने लिखा है – ''बौद्ध मठ, बौद्ध शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र थे। बौद्ध संसार अपने मठों से पृथक या स्वतंत्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं देता था। धार्मिक और लौकिक सब प्रकार की शिक्षा, भिक्षुओं के हाथ में थी।[4]

बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी– ''जातककथाओं'' से प्राप्त होती है। ''जातक कथाओं'' के अनुसार–प्राथमिक शिक्षा केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों को ही नहीं वरन् सभी जातियों के बालकों को उपलब्ध थी। यह शिक्षा मठों में दी जाती थी, और आरम्भ से पूर्णतया धार्मिक थी। कुछ समय उपरान्त ब्राह्मणों ने प्रतिद्धन्दी शिक्षा– संस्थाएं स्थापित करके, उनमें लौकिक शिक्षा देनी आरम्भ कर दी, तब मठों में भी इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गयी। पांचवी शताब्दी में भारत आने वाले चीनी– फाह्यान (Fe-Hien) क`लेखों से इस बात का उल्लेख मिलता है।[2]

सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी–यात्री इत्सिंग (I-Tsing) के अनुसार, – '' प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु 6 वर्ष थी। इस शिक्षा की अवधि साधारणतः 6 वर्ष की थी।[3] सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री हेव्नसांग (Hiuen- Tsing) के अनुसार बौद्ध काल में प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम इस प्रकार के होते थे– बालकों को प्रथम 6 माह में ''सिद्धिरस्तु'' (Siddhirastu) नामक बाल पोथी पढ़नी पड़ती थी। इस पोथी मे 12 अध्याय और वर्णमाला के 49 अक्षर थे, जिनको विभिन्न क्रम में रखकर 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गयी थी। 16 माह के बाद बालकों को अग्राकिंत पाँच विद्यार्थियों की शिक्षा दी जाती थी। शब्द–विद्या, तर्क–विद्या, चिकित्सा–विद्या, अध्यात्म–विद्या और शिल्प स्थान विद्या (Grammar , Logic, Medicine , Metaphysics and Crafts) इस प्रकार पाठ्यक्रम में धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों को स्थान दिया गया था।[4]

एलवर्ट फिटके (Albert-Fiteche) के अनुसार , सामान्य शिक्षण विधि इस प्रकार थी– शिक्षक, लकड़ी की तख्ती पर वर्णमाला के अक्षरों को लिखता था और उसका उच्चारण करता था। बालक उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे। इस प्रकार, जब कुछ समय के बाद उनको अक्षरों का ज्ञान हो जाता था, तब वे उनको लिखते थे। पाठ्य विषय के शिक्षण

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

को अध्यापक आगे–आगे बोलता था और बालक उसके कथन को उस समय तक दोहराते थे, जब तक उनको पाठ्य विषय कंठस्थ नहीं हो जाता था। इस प्रकार इस शिक्षा व्यवस्था में शिक्षण पद्धति की कमी के कारण वह आम प्रयोग में नहीं आती थी। अतः कुल मिलाकर शिक्षण विधि पूर्णतया मौखिक थी। मठ–विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम, जन–साधारण की भाषा पाली थी न कि ब्राह्मणीय शिक्षालयों की तरह संस्कृत। [5]

परिलब्धियॉ :

1. छात्रों के चरित्र निर्माण करना, शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य माना जाता था।
2. शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य शिष्यों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करना और उनकी विशुद्ध पारिवारिक परम्परा (वर्ण) के उन्हें भारी व्यवस्थाअें के लिए तैयार करना था।
3. शिक्षा व्यवस्था को ब्राह्मणकालीन शिक्षा व्यवस्था के नाम से जाना गया।
4. शब्द–विद्या, तर्क–विद्या, चिकित्सा–विद्या, अध्यात्म–विद्या और शिल्प स्थान विद्या (Grammar , Logic, Medicine , Metaphysics and Crafts) इस प्रकार पाठ्यक्रम में धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों को स्थान दिया गया था।

संदर्भ

Dr Ved Mitra :2006; Education in ancient India; page-55-56
Mukharjee R. K. : 2007; Ancient Indian Education, p-394
Keay F.B. : 2009 ; Indian Education in later times.
Mukharjee R. K. : 2007; Ancient Indian Education, p-252
Pathak P.D. : 2015; Indian education and Problems.

Copyright © 2017, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies